IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

संगीत शिक्षण : बेसुरेपन के कारण, दोष एवं उपचार

मो0 रियाज[1] एवं डॉ0 किरण सिंह[2]

[1]शोधार्थी

स्नातकोत्तर संगीत विभाग

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

[2]प्रोफेसर

स्नातकोत्तर संगीत विभाग

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध–सार

आज का जन–जीवन इतना व्यस्त है कि गुरु–शिष्य परम्परा संभव नहीं अतः एकमात्र विकल्प विद्यालयीन शिक्षण परम्परा ही है। जिसके लिए विद्यालयों में संगीत शिक्षण का संचालन ही पर्याप्त नहीं अपितु संगीत का स्तर उठाने के लिए दिये गये दोषों तथा सुझावों को सामने रखकर केवल उन पर विचार ही नहीं बल्कि व्यवहार में भी उनका उपयोग करना होगा तभी संगीत कला एक महान कला की उपाधि प्राप्त करने के योग्य बन सकेगी।

शब्द कुंजी : सूझ–बूझ, निर्णय, शिक्षण विधि, शिक्षण सिद्धांत इत्यादि

आज के वैज्ञानिक युग में गुरु–शिष्य प्रणाली तो प्रायः लुप्त सी हो गई है, आज विद्यालयीन परम्परा का ही बोलबाला है, जिसमें त्रुटियों को देखते हुए उसमें संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इसी प्रणाली में सुधार की दिशा निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत हैं जिन पर अमल करके हम आज के विद्यालयीन परम्परा को भी अधिक सफल बना सकते हैं[1] :–

- कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने से शिक्षक का यही प्रयास होना चाहिए कि वह उनसे अलग–अलग सुने, बंदिशों की स्वरलिपि न देकर स्वयं गाकर सिखाए, जिसकी स्वरलिपि विद्यार्थी स्वयं करें। इससे विद्यार्थी का प्रत्यक्ष ज्ञान तो बढ़ेगा ही साथ ही उसकी श्रवण संवदेना भी परिमार्जित होगी।
- शिक्षक को अपने अनुभव का लाभ देकर विद्यार्थियों की ज्ञान लालसा को बढ़ाना और शंकाओं का स्पष्टीकरण करना चाहिए।

- पाठ्यक्रम उतना ही होना चाहिए, जितना शिक्षार्थी उचित ढंग से प्रयोग कर सके। उदाहरण के लिए हम भारी भरकम पाठ्यक्रम सिर्फ इसलिए बनाते है कि उससे हमारी डिग्री और परीक्षा की साख एवं श्रेष्ठता बनी रहे। अधिक रागों की संख्या और अधिक अच्छे पाठ्यक्रम की द्योतक मानी जाती है। इससे छात्रों की जानकारी में रागों की तादाद तो भले ही बढ़ जाती है लेकिन गायकी के स्तर के मामले में वह वहीं का वहीं खड़ा मिलता है, जहाँ आज से चार साल पहले खड़ा था।

- कोई कठिन भाग सिखाने से पहले उसका सरल सुगम भाग पहले सिखाने से विद्यार्थी के लिए कठिन भाग भी सरल बन जाता है। उसके मन से यदि कुछ डर या आशंका हो तो पहले उसे हटाना चाहिए।

- सामूहिक शिक्षण व्यवस्था में अध्यापक का ध्यान सारे विद्यार्थियों की ओर बराबर विभाजित होना चाहिए उसे निष्पक्ष होकर शिक्षा देनी चाहिए।

- संगीत शिक्षण विधि पर शोध किए जाने चाहिए अन्य विषयों की भांति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा संगीत के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा या शोध हेतु अनुदान दिया जाना चाहिए।

- योग्य छात्र–छात्राओं को संगीत की विशेष शिक्षा देने का प्रबंध होना चाहिए।

- समय का बंधन संगीत प्रशिक्षण के लिए हटा लिया जाए क्योंकि स्कूल, कॉलेजों में 45 मिनट की समय अवधि में संगीत की सूक्ष्मताओं का ज्ञान देना असंभव है। अगर समय बंधन रखा भी जाये तो कम से कम संगीत विषय की कक्षाओं के लिए 2 से 3 घंटे का समय प्रतिदिन होना चाहिए जिसमें विद्यार्थी पूरी लगन से साधना कर सके।

- शास्त्रीय संगीत के लिए जनमत निर्माण हेतु संगीत की शिक्षा सर्वसाधारण को अनिवार्य रूप से उपलब्ध होनी चाहिए।

- संगीत एक क्रियात्मक विषय है परन्तु पी–एच.डी. के लिए सिर्फ थ्योरी ही काफी समझी जाती है। परिणामस्वरूप जितने सालों में वह पी–एच.डी. कर पाता है, उतने सालों तक वह अपने सितार या तानपूरे की धूल तक नहीं झाड़ पाता और उसका गाना–बजाना उससे भी नीचे चला जाता है।

- संगीत के लिए परीक्षा प्रणाली को सुव्यवस्थित होना चाहिए। आज के विद्यार्थी परीक्षा के बल पर अधिक अंक प्राप्त कर लेता है, जिससे विषय की सात्मिकता स्वाभाविक ही नष्ट हो जाती है।

- पाठ्यक्रम में शास्त्र पक्ष को उतना ही रखना चाहिए, जितना ज्ञानोपार्जन छात्र के लिए अनिवार्य हो। ज्यादा सैद्धांतिक पक्ष होने से विद्यार्थी का क्रियात्मक पक्ष गौण हो जाता है।

- रागों का प्रशिक्षण देते समय पुराने और उत्तम गायक–वादकों के उन्हीं रागों के ग्रामोफोन–रिकार्ड और टेप सुनवाने का कार्यक्रम नियमित रूप से चलना चाहिए।

- विद्यार्थियों को मंच प्रदर्शन के लिए प्रेरणा बल दिया जाए इससे उनमें साधना की लगन पैदा हो। समय–समय पर होने वाली प्रतियोगिताओं और मंच प्रदर्शनों से विद्यार्थी को अपने सबल और कमजोर पक्ष का ज्ञान हो सकता है और वह अपने अगले प्रस्तुतीकरण में उन कमजोरियों को दूर कर सकता है।

- संगीत की शिक्षा के लिए बुनियादी बातों पर जोर देना चाहिए पाठ्यक्रम से बहुत सारे राग और ख्याल न रखकर, प्रारम्भिक बुनियादी तत्त्वों पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए परीक्षा के समय भी अलंकार, स्वर ज्ञान, ताल ज्ञान, स्वर लगाव आदि इन्हीं बातों पर आधारित प्रश्न पूछे जाने चाहिए छात्रों को अभ्यास का महत्त्व बताया जाना चाहिए ताकि अभ्यास कैसे करें, किस–किस चीज से करें इन बातों को स्पष्ट कर अभ्यास के लिए प्रेरित करना चाहिए।[2]

- शिक्षक का भी मुख्य ध्येय केवल पैसा कमाना ही नहीं अपितु संगीत के सच्चे कलाकार पैदा करना ही होना चाहिए, किताबों की अपेक्षा उसे खुद गाकर विद्यार्थियों की शंकाओं को दूर करना चाहिए। बंधी हुई चीज और बंधे हुए आलाप तान की अपेक्षा खुली गायकी के लिए विद्यार्थी को प्रेरित करना चाहिए अतः शिक्षक को अपनी जिम्मेदारी परिपूर्ण निभानी चाहिए।

- आज के संगीत शिक्षा के स्तर को देखते हुए लगता है कि गायन, वादन, नृत्य आदि 'नाद विद्या' के स्तर को उठाने के लिए किसी न किसी रूप में 'गुरु–शिष्य पद्धति' को प्रोत्साहन देना होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि गुरु शिष्य परम्परा और विद्यालयीन शिक्षण का किसी तरह समन्वय हो जाए जिससे विद्यार्थी गुरु–गायकी के गुणों को ग्रहण कर सकें।

बच्चे के कंठ स्नायु की तरह हाथ–पैरों की मांसपेशियाँ अत्यंत कोमल होती हैं। उन्हें जिधर मोड़ दिया जाए उधर ही विकसित होती जाएगी। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ लक्ष्य निर्धारित करके बच्चे को संगीत सिखाना शुरू करना चाहिए। अबोध बालक जब स्कूल आता है तो वह हर विषय में अज्ञात होता है। शिक्षक को ऐसे समय में सरलता से शुरू करके धीरे–धीरे कठिनता की ओर बढ़ना चाहिए। संगीत जैसे विषय में जो जन्म से ही बालक के साथ शुरू हो जाता है। सरल गीतों को चुनना चाहिए ये गीत फिल्मी भी हो सकते हैं। क्योंकि बच्चे अन्य गीतों की अपेक्षा फिल्मी गीत जल्दी सीख जाते हैं, जो उनको संगीत शिक्षण में सही हो सकते हैं। इस तरह शिक्षक को फिल्मी गीतों से शुरू कर धीरे–धीरे देशभक्ति गीत, प्रार्थना गीत सीखाने चाहिए बाद में ऊपर बढ़ने के साथ–साथ शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देनी लाभदायक होगी। बच्चों के पाठ सरल हो ताकि बच्चे उन्हें शीघ्रता से ग्रहरण करेगा और यदि उसे कठिन वस्तु पहले सिखाई जाए तो बच्चा उसे जल्दी ग्रहण नहीं करेगा, रूचि नहीं लेगा तथा वह विषय उसे नीरस लगेगा।

"बच्चों के पाठ सरल होने चाहिए, किन्तु यह शिक्षा कड़ी होनी चाहिए।" अथवा इसमें शैथिल्य नहीं आना चाहिए तथा शिक्षक को बच्चों की प्रगति पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए धीरे–धीरे उसके पाठों में अपेक्षाकृ

त कठिन वस्तुओं को सम्मिलित करना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा शिक्षक के सूझ–बूझ निर्णय, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण सिद्धांतों पर निर्भर करती है, जो विद्यार्थी के प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बेसुरेपन के कारण एवं उपचार

- दोषपूर्ण गायक बच्चे।
- जो बच्चे बेसुरा गाते हैं।
- जो गायक नहीं है।
- जो केवल सुन रहे हैं।
- जो एक ही स्वर पर गा रहे हैं।
- जो बाते करते हुए गाते हैं।
- जो असावधानी से गाते हैं।

जो बच्चे एक ही स्वर पर गाते है। उनका दोष दूर नहीं हो सकता। दूसरा मत यह है कि ऐसे बच्चे एक ही स्वर पर नहीं गाते क्योंकि जिन स्वरों को वे गाते हैं, वे उचित ऊँचाई–निचाई के नहीं होते। इसलिए उन्हें एक प्रकार से "एक ही स्वर पर गायन करने वाला" कह दिया जाता है, जो अनुचित है। ऐसे बच्चे भी सुधारे जा सकते हैं।[3] बेसुरेपन के छः कारण हो सकते हैं :–

1. **बच्चों के कान का दोषी होना –** अनेक बच्चों के कान ऐसे होते हैं कि वे किन्हीं समीप के दो स्वरों का अंतर नहीं समझ पाते। एक सप्तक का अंतर तो उन्हें कुछ अंतर प्रतीत होता है। अन्यथा छोटे स्वरों में इन्हें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता इसका कारण यह भी हो सकता है कि कुछ बच्चों ने स्कूल में प्रवेश पाने से पूर्व न तो कभी गायन, वादन को ध्यान से सुना और न ही कभी गाने का प्रयत्न किया हो।
2. कभी बच्चों के समझ में ये भी नहीं आता कि गायन कैसे किया जाए वे बोलने की ध्वनि और गायन करने की ध्वनि का अन्तर ही न समझते हों।
3. कभी ऐसा भी होता है कि गायन करते समय बच्चे को अधिक बल का प्रयोग करना पड़ रहा हो, ऐसी अवस्था में वो नियत स्वर से कुछ ऊँचा गाते हैं। प्रयास करने पर उनकी भौंहों का चढ़ना, माथे पर सिकुड़न पड़ना, मुट्ठियों का बंधा जाना, चेहरे का लाल होना व गले की नसों का फुलना इत्यादि।
4. कई बार बच्चों के बैठने का ढंग भी खराब होता है। अनुचित बैठक से अभिप्राय किसी चीज का सहारा लेकर बैठना या भद्दे ढंग से बैठने का है।
5. मस्तिष्क और ध्वनि में एकता का स्थापित न होना भी बेसुरापन उत्पन्न करता है।

6. नांक, मुंह, गले के रोग की गिल्टियों में खराबी, तालु का फट जाना, होठों का छोटा होना, जिह्वा का स्थूल होना, हकलाकर बोलना, बहरापन अथवा बुद्धि का दुर्बल होना भी बेसुरेपन के कारण हैं।

बेसुरेपन के दोष एवं उपचार :

प्रथम दोष को दूर करने के लिए ऐसे गीतों को चुनना चाहिए जिनमें स्वर अधिक ऊँचे–नीचे हों, जिनमें एक स्वर से दूसरे स्वर तक ध्वनि को कूदकर अथवा कुछ स्वरों को छोड़कर गाना पड़े इस प्रकार से छोड़कर या लांघकर उच्चारण किए जाने वाले स्वर 'स ग प' अथवा 'म प स' इत्यादि हैं।

कुछ ऐसे सांगीतिक व्यायाम भी हैं जिनमें अधिक ऊँचे–नीचे स्वर प्रयुक्त होते हैं। जेसे स्वर मिलाना–अध्यापक किसी फूंक के वाद्य से अथवा हारमोनियम पर अथवा कंठ से किसी एक ऊँचे स्वर की ध्वनि को उत्पन्न करें। फिर किसी बच्चे से उसी ध्वनि की नकल करने को कहो चाहे तो बच्चे भी अपने मुंह पर कागज को गोल करके, वंशी के आकार जैसा बना ले अथवा किसी ध्वनि उत्पन्न करने वाले खिलौने को मुंह पर रखकर ध्वनि उत्पन्न कर सकते हों यदि कुछ भी न हो तो हाथों से शंख जैसा आकार बनाकर ध्वनि की नकल करें।

अध्यापक जो भी स्वर उच्चारण करे वह कम से कम उसका उच्चारण तीन बार हो जैसे 'सं सं सं' ऐसा करने से बच्चे के मस्तिष्क में लय भी जम जाएगी। भली–भांति बच्चा उसे सुन भी सकेगा। बच्चे नकल करते समय जो ध्वनि उच्चारित करेगें उसमें भी 'आ आ आ' ही होगा।[4]

इन सभी बताए दोषों तथा उपचारों पर विवेचन किया जाए तो कहा जा सकता है कि एक कुशल अध्यापक को बच्चे के दोषों को दूर कर तथा उनके उपचार का ज्ञान हो ताकि बच्चों के दोषों को परिपक्व होने से पहले ही निकाल दिया जाए। कई ऐसे प्रवीण बालक भी होते हैं जिन्हें संगीत का ज्ञान व रूचि होती है, लेकिन अपने दोषों की पहचान न होने के कारण उन्हें विषय छोड़ना पड़ता है। जैसे कानों का दोषी होना या बहरापन होना। वह ठीक से अध्यापक की आवाज को नहीं सुन पाता तथा कक्षा के अन्य विद्यार्थियों से पीछे रह जाता है या मुंह, गले के रोग या गले की गिल्टियों की खराबी से उन्हें गायन करने में कठिनाई अनुभव होती है ऐसे समय में उसके दोषों को एक कुशल अध्यापक ही दूर कर सकता है। अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थी के दोषों को जाने तथा उनके अभिभावकों को उनके प्रति जानकारी दें। जिससे किसी डॉक्टर से दोषों का उपचार हो सके।

अध्यापक को चाहिए कि यदि किसी विद्यार्थी को गाते समय अधिक बल का प्रयोग करना पड़ रहा हो तथा गाते समय चेहरे का लाल होना, गले की नसों का फूलना या माथे पर सिकुड़न पड़ना आदि दोष पाए जाते हैं तो उसका गायन स्केल नीचा करा दें। ताकि विद्यार्थी का ऊँचा गाने में परेशानी ना हो।

कक्षा में अध्यापक को बड़ी सतक्रता से काम लेना पड़ता है। बच्चों के बैठने के ढंग को शुरू से ही ठीक करवाना बहुत जरूरी होता है नहीं तो वही दोष परिपक्व हो जाते हैं तथा बाद में उन दोषों को दूर करना कठिन हो जाता है। बच्चों को सुनवाने की आदत डलवानी चाहिए, जिससे बालकों की श्रवण शक्ति प्रबल होगी। रेडियो या टेप रिकार्डर से उन्हें गीत सुनवाने चाहिए जिससे दूसरों को सुनने का अवसर मिल

सकेगा। यदि अध्यापक दोषों को जानकर उनका उपचार करें तो निश्चय ही संगीत की प्रगति के साथ–साथ विद्यार्थी का भी भला होगा।

निष्कर्षतः मौखिक एवं लिखित दोनों परम्पराएँ संगीत शिक्षण में आवश्यक है। एक के बिना दूसरी अपूर्ण है, दोनों का कार्य महत्त्वपूर्ण है। एक संगीत की आत्मा है, तो दूसरी उसका शरीर, परन्तु आज अधिकांश संस्थाओं में प्रत्यक्ष मौखिक शिक्षण से अधिक महत्त्व स्वरलिपि पद्धति को प्राप्त हो रहा है। परिणामस्वरूप शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से संगीत का प्रचार–प्रसार तो हो रहा है, किन्तु गुणात्मक स्तर अत्यंत निम्न होता जा रहा है।[5] अतः हमें इसी बात पर ध्यान देना चाहिए कि स्वरलिपि एवं पुस्तकों का अत्यन्त सीमित प्रयोग करें अर्थात् उन्हीं पर सम्पूर्णतय आश्रित न रहे। संपूर्ण शिक्षण मौखिक रूप में ही होना चाहिए केवल प्रमुख बातों को सुरक्षित रखने तथा विस्मरण की स्थिति में ही उसका सहारा लेने के रूप में स्वरलिपि का व्यवहार उचित है। अर्थात् उसकी मर्यादाओं को समझते हुए दोनों का सामांजस्य करने से ही उचित प्रमाण उपलब्ध हो सकेंगे और लक्ष्य उद्देश्यों की पूर्ति होगी।

संदर्भ–सूची :

1. कपूर, तृप्त, (1989) : **उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा**, हरमन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
2. खन्ना, जतिन्द्र सिंह, (1996) : **नाद और संगीत**, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़
3. गर्ग, डॉ. लक्ष्मीनारायण, (2006) : **आवाज सुरीली कैसे करें?**, संगीत कार्यालय, हाथरस
4. चौबे, डॉ. अमरेषचन्द्र (1988) : **संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली**, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
5. जैन, श्रीमती विजयलक्ष्मी (2002) : **संगीत दर्शन**, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, राजस्थान